## ‘द्रव्यदृष्टि प्रकाश’ ग्रन्थमें से चयन किये गये विषयक वचनामृत

### पर्याय का कर्तापने का निषेध

प्रश्न :– अनुभव के लिए विचार–मनन–घूँटण में रहना चाहिए?

उत्तर :– पर्याय में बैठकर (–पर्याय में मैं–पना–रखकर अर्थात् पर्याय में अस्तितत्व की स्थापना करके) घूंटण–मनन करने में पर्याय में ठीकपना (संतोष) रहता है। और द्रव्य में बैठने से (–द्रव्य में अस्तितत्व स्थापित करने से) घूँटण–मनन सहज होता है; घूँटण आदि में जोर नहीं रहता, सहज होता है; ज़ोर तो इधर का(अन्तर्तत्त्वका) रहता है। पर्याय में बैठकर घूँटण आदि करने से अंदर में नहीं आ सकते। ६५

❖

प्रश्न :– उपयोग को अंदर में वालने की (अंतर्मुख करने की) बात है न?

उत्तर :–इसमें भी उपयोग में (–पर्याय में) अपनापन, और अपनी ध्रुववस्तु में परायापन हो जाता है। ‘उपयोग ‘मेरी’ ओर आएगा’– ऐसा होना चाहिए। १७१

❖

प्रश्न :–ज्ञान तो करना चाहिए न ?

उत्तर :– अरे भाई! ज्ञान अपना स्वभाव है कि नही? स्वभाव है तो ज्ञान तो होता ही है; ‘करना चाहिए’ – इसमें तो वज़न पर्यायपर चला जाता है और अक्रिय सारा पड़ा रह जाता है।

‘मैं वर्तमान में ही अक्रिय हूँ, कुछ करना ही नहीं है’ – ऐसी दृष्टा होनेपर, ज्ञान–क्रिया सहज उत्पन्न होती है। जानने आदि का विकल्प भी आता है, परंतु इस पर वज़न नहीं जाना चाहिए; यह सब गौण रहना चाहिए। १७५.

❖

(कर्ताबुद्धि के निषेध की अपेक्षा से कहा :) ज्ञान करने की ज़रुरत नहीं; मंद कषाय करने की ज़रुरत नहीं; निर्विकल्पता करने की ज़रुरत नहीं; केवलज्ञान करने की ज़रुरत नहीं; – सभी सहज होते हैं, करने का बोझा ही नहीं रखना है। अपरिणामी पर आए तो सब सहज ही होता है। ‘ज्ञाता–दृष्टा रहूँ’– यह भी नहीं; इधर (आत्मा में) आया तो ज्ञाता–दृष्टापना सहज रहता है, ‘रहूँ’ – ऐसा नहीं। २१९.

❖

प्रश्न :– उपयोग को स्वयं की ओर ढालने का ही एक मात्र कार्य करने का है न ?

उत्तर :– पर्याय की अपेक्षा से तो ऐसा ही कहा जाएगा। क्योंकि उपयोग दूसरी ओर है तो इधर लाओ – ऐसा कहने में आता है। असल में तो ‘में ख़ुद ही उपयोग स्वरुप हूँ.’ ‘उपयोग कहीं गया ही नहीं’ –ऐसी दृष्टि होनेपर, (पर्यायअपेक्षा से) उपयोग स्वसन्मुख आता ही है। २२३.

❖

परिणाम में फेर–फार करना मुझ चैतन्य–खान का स्वभाव नही है।‘पुरुषार्थ की खान ही मैं हूँ ’तो फिर एक समय के पुरुषार्थ में ‘करने की’ आकुलता क्यो? २३४

❖

# स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्–२५४२ : अंक–२२०, वर्ष–२०,मार्च–२०१६


## ज्येष्ठ कृष्ण ६, गुरुवार, दि. ९–६–१९६६, योगसार पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, प्रवचन–४, गाथा–१२

बार, आत्मज्ञानी ही निर्वाण पाता है। बारहवीं (गाथा) आत्मा के भानवाले को मुक्ति होती है। आत्मा के भान बिना संसार में भटकना होता है, इसमें दोनों बातें हैं।

**अप्पा अप्पउ जइ मुणहि, तो णिव्वाणु लहेहि।**
**पर अप्पा जइ मुणहि तुहुँ, तो संसारु भमेहि।।१२।।**

**यदि आत्मा, आत्मा को समझेगा**....अर्थात् भगवान आत्मा ज्ञान, दर्शन, आनन्द का पिण्ड प्रभु ज्ञातादृष्टा, वही मेरा स्वरूप और वह मैं आत्मा–ऐसे आत्माको अपने शुद्ध स्वभाववाला समझेगा....भगवान आत्मा वह स्वयं शुद्ध ज्ञान, दर्शन, आनन्दादि शुद्ध स्वभाववाला शुद्धस्वरूप आत्मा है–ऐसा जो समझेगा तो निर्वाण प्राप्त करेगा तो उसमें एकाकार होकर, जिसने आत्मा जाना, उसमें दृष्टि लगाकर एकाकर होकर पूर्णानन्दरूपी निर्वाण अर्थात् मुक्ति को प्राप्त करेगा। समझ में आया? बहुत संक्षिप्त।

**अप्पा अप्पउ जइ मुणहि 'जइ मुणहि'** ऐसा है न? **जो आत्मा, आत्मा को समझेगा**....यदि तू भगवान आत्मा को आत्मारूप से ज्ञानानन्द चैतन्यसूर्यरूप से अन्दर भगवान को देख, यदि तू जाने, समझे तो उस पृथक् तत्त्व को पृथक् जाननेसे अल्प काल में अत्यंत मुक्त निर्वाण पद को प्राप्त करेगा। समझ में आया? उसी–उसी में घोलन करते हुए निर्वाण पद को प्राप्त करेगा–ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कि भाई! आत्मा तो जाना, लो! तो निर्वाण पायेगा। बीच में फिर क्या करने का है? कि यह आत्मा चैतन्य ज्योत ज्ञायकमूर्ति है– ऐसा जाना, यह उसी–उसी में जानना... जानना... जानना... जानना... जानना... जानना... रह गया। वह स्थिर होने पर वीतरागता को पायेगा। उसमें बीच में व्यवहार आयेगा, उसकी बात ही नहीं की, भाई! आहा...हा...! अस्ति से ही बात ली है न!

भगवान आत्मा, विकल्प–पुण्य–पाप के विभावरहित चीज है – ऐसी चीज को **अप्पउ** आत्मा ने आत्मा को जाना। आहा...हा...! बस! उसमें यह जाना, यह मैं...यह मैं... यह मैं... ऐसी जो दृष्टि और स्थिरता (हुई), वह निर्वाण को पायेगा। इस आत्मा को साधन होकर, आत्माका साधन आत्मा ही करके, आत्मा का साधन आत्मा द्वारा करके आत्मा निर्वाण अर्थात् मुक्ति को प्राप्त करेगा। कहो, समझ में आया? कुछ सूक्ष्म पड़े तो थोड़ा विचार करना, थोड़ा तो धीरे–धीरे कहते हैं, कहीं एकदम नहीं कहते। तुम प्रोफेसर तो सब एकदम (बोलते हो) । ए....भाई! धीरे–धीरे तो कहते हैं, उसमें थोड़ा विचार करने का अवकाश (रहता है) । आहा...हा...!

ऐसा चैतन्य प्रभु, चैतन्य प्रकाश की मूर्ति... इस प्रकाश का प्रकाशक, राग का प्रकाशक, जड़ का

प्रकाशक...राग का आत्मा नहीं, जड़ का आत्मा नहीं, जड़ और राग का प्रकाशक और अपने स्वरूप का भी प्रकाशक। समझ में आया? ऐसा प्रकाशकस्वरूप भगवान आत्मा को ऐसा जाना कि यह तो प्रकाश का पुंज ही प्रभु स्व-पर को प्रकाशित करे, वह चीज है। पर को अपना माने, वह चीज इसमें है ही नहीं। समझ में आया? और वह पर को प्रकाशित करता है, वह पर है, इसलिए प्रकाशित करता है - ऐसा भी नहीं है। वह स्वयं का प्रकाशक स्वभाव स्व और पर को प्रकाश की सत्ता की अस्ति से स्व और पर को प्रकाशित करना है। पर की अस्ति के कारण पर को प्रकाशित करता है-ऐसा नहीं है। समझ में आया इसमें? ऐ...ई... आहा...हा...!

कहते हैं कि धैर्यवान तो हो, भाई! बापू! तेरा घर तूने कभी देखा नहीं, परघर में भटकना, कहाँ-तहाँ। पर घर में भटका। देह का किया और यह किया और वह किया, शुभ-अशुभविकल्प उठे, विकार किया वह सब पर घर है, स्वघर को देखा नहीं, कहीं आया अवश्य था। अभी भजन आया था, उसमें आया था- वीरवाणी... वीरवाणी... वीरवाणी... में आया था न? उसमें मुखपृष्ठ पर एक वाक्य था- पर घर का, हाँ! ऐसा था। कहा, अब सब बोलने लगे हैं। स्वघर... लोग भी कहते हैं, हाँ! समझ में आया? अब हमारे घर बनाना है, अब कब तक (ऐसा रहना) ? घर बनाना हो तो ऐसे का ऐसे नहीं चलेगा। समझ में आया? ऐसा यहाँ कहते हैं, बापू! तेरा घर तुझे बनाना है या नहीं? यह राग और विकल्परहित प्रभु में तू दृष्टि दे तो यह तेरा घर बना - एकाग्र हुआ और उसमें से क्रम-क्रम से ज्ञान पक्का घर हो जायेगा मोक्ष.... मोक्ष...मोक्ष...।

**अप्पा अप्पउ जइ मुणहि तो णिव्वाणु लहेहि।** अब गुलांट खाता है। पर अप्पा जउ मुणिहि अब ऐसा कहते हैं। परन्तु **पर पदार्थ को आत्मा मानेगा...** परन्तु आत्मा के अतिरिक्त विभाव, विकल्प और शरीर, कर्म, उदयभाव और उदय-विकार आदि अशुद्ध मलिन भाव जो जिसकी चीज में नहीं है, क्षणिकविकारीभाव नित्य-चीज नहीं है- ऐसे **परपदार्थ को आत्मा मानेगा....** उसे जो आत्मा मानेगा कि यह भी मैं, इस अस्तित्व में भी मैं, इस राग और विकल्प के अस्तित्व में मैं, उससे छूटेगा नहीं अर्थात् वह संसार में भटकेगा। अद्भुत संक्षिप्त, भाई! बहुत माल निकाला है न, प्रभु!

**पर अप्पा जइ मुणिहि** देखो न, उसमें भी । **जइ मुणहि** ऐसा यदि आत्मा को आत्मा जाने तब तो मुक्ति (पायेगा)। आत्मा को पर जाने, आत्मा आत्मारूप से अस्तिपने ज्ञाननन्दशुद्ध अस्तिपने जाना तो अस्तिपने अकेला निर्मलानन्द मुक्ति में रहा गया। आत्मा परपने जाने **पर अप्पा जउ मुणिहि** (पर) पदार्थ को आत्मा मानेगा। **तुहु तहुं संसार भमेहि।** तो तू जिसे निज मानता है, वह चीज संसार है। विकार, पर वह संसार है, उसे अपना मानकर उसी-उसी में रहेगा और संसार में रहेगा। समझ में आया? आरे....! ऐसी बात कठिन पड़ती है। ऐसी (बात) पहले सुनी थी? अब इन ने रस लिया, यहाँ उसमें लड़के बैठे.... कहा ठीक किया यह। समझ में आया? ए... भाई! देखो, यह बात करते हैं। देखो, यह।

**पर अप्पा जउ मुणहि तुहुँ।** तो तू। **संसार भमेहि** यदि विकार को, शरीर को कर्म को- जो स्वरूप में नहीं है उन्हें, उनके अस्तित्व में तेरा अस्तित्व माना, बस! वह छूटेगा नहीं अर्थात् उसमें भटकेगा। इसका नाम संसार, इसका नाम संसार। समझ में आया? मुक्ति और संसार दोनों की बात एक गाथा में समाहित कर दी है। (श्रोता - प्रमाण वचन गुरुदेव!)

# ज्येष्ठ कृष्ण ८, शनिवार, दि. ११–६–१९६६, योगसार पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, प्रवचन–५, गाथा–१३

यह 'योगसार' शास्त्र है। योगीन्द्रदेव मुनि हुए हैं, दिगम्बर सन्त! उन्होंने आत्मा के अन्तर–योग अर्थात् व्यापार, उसका सार वर्णन किया है। जिससे आत्मव्यापार से कल्याण और मुक्ति होती है। बारह गाथा हो गयी है, तेरहवी–**इच्छीरहित तप ही निर्वाण का कारण है।** तेरहवी गाथा।

**इच्छा–रहियउ तव करहि, अप्पा अप्पु मुणेहि।**
**तो लहु पावहि परम–गई, फुडु संसारू ण एहि।।१३।।**

अप्पा अर्थात् आत्मा.... इच्छारहित तप करके...कर्ता स्वयं आत्मा, आत्मा को जाने। क्या कहते हैं? आत्मा अपने शुद्ध आनन्द पवित्रस्वरूप को जानकर और शुभ व अशुभ इच्छा जो राग उसे रोककर और अपने शुद्धस्वरूप में तप अर्थात् लीनता करे, अपने शुद्ध पवित्रस्वरूप में तपना अर्थात् लीन होना, उसे यहाँ तप कहा जाता है। समझ में आया?

इच्छारहित.... इच्छा अर्थात् शुभाशुभरागरहित अर्थात् आत्मा शुद्ध पवित्रस्वरूप है। पुण्य–पाप के रागरहित ऐसे स्वभाव का ज्ञान करके और उस स्वभाव में पुण्य–पाप की इच्छा को रोककर स्वरूप में लीन हो, उसे यहाँ तप कहा जाता है। इस तप से आत्मा की मुक्ति होती है।

**मुमुक्षु –** खूब करते हैं।

**उत्तर –** कौन करते हैं?

**मुमुक्षु –** अपने पर्युषण आवे तब करते हैं।

**उत्तर –** वह सब लंघन करते हैं। लंघन करते हैं लंघन। सेठ! इस पर्युषण में सब क्या करते हैं?

**इच्छा रहियउ तव करहि** यह शब्द क्या है? आत्मा वस्तुस्वरूप से इच्छारहित है। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप अनन्त आनन्द की मूर्ति आत्मा है। उसमें इच्छा ही नहीं; अतःउसमें इच्छा नहीं तो इच्छा जो है, उसकी और का आश्रय–लक्ष्य–रुचि छोड़कर और जिसमें इच्छा नहीं है, ऐसा आत्मा, अनन्त ज्ञान–दर्शन आनन्द (स्वरूप है), उसकी श्रद्धा ज्ञान और लीनता.... उसमें लीनता शुद्धस्वरूप में शुद्धउपयोगरूपी लीनता, शुद्धस्वभाव में शुद्ध आचरणरूपी तपना, उससे संवर और निर्जरा होते हैं। कहो, समझ में आया? अशुभभाव होवे तो पाप होता है; शुभभाव –दया, दान होवे तो पुण्य होता है। वह धर्म नहीं है। समझ में आया?

**इच्छा रहियउ तव करहि** तप अर्थात् आत्मा की लीनता। दूसरी भाषा में कहें तो वीतराग में लीनता और राग का अभाव। समझ में आया? इच्छा रहित अर्थात् सरागता का अभाव और तप अर्थात् शुद्धाता में लीनता; शुद्धता में लीनता और शुभाशुभ परिणाम का अभाव। उसे यहाँ मुक्ति का कारण तप कहा जाता है। अदभुत व्याख्या, भाई! कहो समझ में आया?

आत्मा शुद्ध चिदानन्दस्वरूप आनन्दमूर्ति के भान बिना अकेले उपवासादि करे, वह तो राग की मन्दता हो तो उसमें मिथ्यात्वसहित पुण्य बाँधता है। जन्म–मरण का अन्त और धर्म का स्वरूप उसे नहीं कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

**इच्छा रहियउ तव** नास्ति से बात की, फिर तप से, अस्ति से कही। भगवान आत्मा–ऐसा कहा न? **अप्पा अप्प मुणेहि** अपना शुद्धवितरागी वास्तविक स्वरूप, निर्दोष अकषाय उसका स्वभाव, उसे जाने अर्थात् जानकर उसमें लीन होवे, उसका नाम इच्छारहित तप कहा जाता है। आहा...हा...!

मुमुक्षु – आत्मा के जाने बिना तप होता ही नहीं?

उत्तर – परन्तु आत्मा अर्थात् क्या? आत्मा अर्थात् रागरहित आत्मा। रागरहित आत्मा, उसके स्वभाव के ज्ञान बिना, उसमें स्थिरता कैसे होगी?

मुमुक्षु – धर्म तो है न?

**उत्तर –** धर्म किसे कहते हैं? धर्म कहना किसे? आत्मा परमानन्द आनन्द का भान हो, उस आनन्द में स्थिर हो, उसका नाम धर्म है। आत्मा में आनन्द है।

अतीन्द्रिय आनन्द, मैं अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप हूँ - ऐसा जिसे ज्ञान नहीं, वह उसमें स्थिर कैसे होगा? आकर्षित कैसे होगा? अतीन्द्रिय आनन्द अपने में न भासित हो, वह उसमें आकर्षित और स्थिर कैसे होगा? जिसे पुण्य-पाप के परिणाम में ठीक लगता हो, वह वहाँ से हटेगा कैसे? समझ में आया? कहो, इसमें समझ में आता है या नहीं? भाई!

अस्ति-नास्ति की है, देखो! **इच्छा रहियउ** और **तव करहि**- ऐसा कहा है न! **तव करहि** अस्ति है और **इच्छा रहियउ** नास्ति है। अर्थात् क्या कहा? कि भगवान अस्ति स्वरूप से पहले कहा है, कि हे आत्मा। **अप्प मुणेहि** आत्मा ज्ञान, चैतन्य, दर्शन, आनन्द, निर्दोष पूर्ण अनन्त स्वभाव पिण्ड ऐसा भगवान, उसे जान। क्यों? कि वह इच्छारहित चीज है, और इच्छारहित चीज में इच्छा को टालकर स्वरुप ऐसा शक्ति से वीतराग है, उसमें स्थिर हो, उसे अस्तिरूप तप कहा जाता है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात पड़ती है, भाई! उपवास करना हो, अन्य करना हो तो एकदम पकड़ में भी आवे...लो!

**मुमुक्षु –** क्या पकड़ में आवे।

**उत्तर –** यह कुछ करते हैं - ऐसा इसे लगता है।

यहाँ तो सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थकरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा, जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल का ज्ञान था। वे परमेश्वर वीतराग तीर्थकर ऐसा फरमाते हैं, भाई! यह आत्मा ज्ञानन्द शुद्धस्वरूप पवित्र आनन्दस्वरूप है। उसमें स्थिर हो,लीन हो, उसे तप कहा जाता है। उसमें लीन हुआ तो इच्छा रुक गयी। इच्छा रुक गयी, स्वरूप में लीन हुआ, यह इसे मुक्ति का मार्ग कहा जाता है। कहो, समझ में आया? कहो, भाई! क्या करना यह?

**इच्छा रहियउ तव करहि 'करहि'।** भगवान आत्मा....! बहुत संक्षिप्त शब्दों में अकेला सार ही भरा है। 'योगासार' है न? योग अर्थात् स्वरूप में जुड़ान करके स्थिर होना। यह भगवान आत्मा पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द की सत्ता के स्वभाव से भरपूर प्रभु, इसकी लालच में दृष्टि गयी, इच्छाओंकी - शुभाशुभ की वृत्तियों को रोककर....रोककर कहना, यह भी एक नास्ति से बात है। परन्तु स्वरूप में 'इच्छारहित' शब्द कहा है न? स्वरूप शुद्ध चैतन्य ज्ञायक की सत्ता का भान, उसमें दृष्टि और स्थिरता करने से इच्छा रुक जाती है और स्वरूप में लीनता होती है, उसे यहाँ तप और धर्म कहा जाता है। समझ में आया? तप अर्थात् आहार नहीं खाना और अमुक दुध और दही नहीं खाया, इसलिये तप हो गया-ऐसा नहीं है। यह सब लंघन है लंघन। यहाँ तो चारित्र की रमणता, वह तप है। समझ में आया?

अनादि से ऐसे राग में रमता है। पुण्य-पाप के राग के विकल्प में रमता है, वह संसार है। समझ में आया? उस पुण्य-पाप के राग से हटकर, जिसमें पुण्य-पाप नहीं है-ऐसा भगवान आत्मा का स्वभाव, उसमें स्थिरता को वास्तव में मुक्ति का उपाय और तप कहते है।

**मुमुक्षु –** आत्मा को जानने के बाद स्थिरता की बात है।

**उत्तर –** जाने बिना स्थिरता कैसे करेगा?

मुमुक्षु - जानने के लिये तप करना न?

**उत्तर –** तप क्या करे? धूल... जानने के लिये तप करते होंगे? कहो, तुम्हारा नाम जानना हो तो कितने उपवास करने से नाम जानने में आयेगा? साथ में मनुष्य खड़ा हो, मुझे पूछना नहीं, जानना नहीं, कहो कितने तप से ज्ञात होगा?

**मुमुक्षु –** दूसरे को विचार होता है कि यह कुछ माँगता है।

**उत्तर –** पूछना पड़े न इसे? पूछना पड़े न, तुम कौन हो? तुम्हारा नाम क्या है? है? धूप में खड़े रहो तो?

**मुमुक्षु –** परन्तु लौकिक तप और यह लोकोत्तर अलग बात है न?

**उत्तर –** लौकिक में दूसरा हो और लोकोत्तर में दूसरा हो- ऐसा होगा? यह तो दृष्टान्त है। किसी भी व्यक्ति का नाम जानना हो, उसकी पहचान करना हो तो इस जेब में से पाँच लाख रुपये दे देवे तो नाम ज्ञात हो जायेगा? कहो, भाई! जेब में से दूसरे को दे दे तो? इस दान से नहीं होता। दो-चार दिन मौन रह जाये,नाम ज्ञात हो जायेगा? समझ में आया? नाम जानने का तो जो

अज्ञान है, उसे ज्ञान द्वारा ही अज्ञान नष्ट होता है। तुम्हारा नाम क्या है? अभी पूछे न, आपका शुभ नाम क्या है? ऐसा क्या कुछ कहते है न? हैं? आपका शुभ नाम। ऐसी सब भाषा है न? क्या कहते हैं? ऐसा कुछ कहते हैं न? आपका शुभ नाम क्या है? ऐसा पूछते हैं। तब कहता है, हमारा नाम अमुक है।

यहाँ कहते हैं, है आत्मा! तू कौन है? ऐसा यहाँ कहते हैं। तेरा नाम अर्थात् तू किसमें रहता है? तू किसमें रहा हुआ है? तूझे किस प्रकार पहचानना? **अप्पा अप्प मुणेहि** ऐसा शब्द है। आत्मा अपने आत्मा का ज्ञान करे कि यह आत्मा... यह आत्मा... जाननेवाला-देखनेवाला आनन्द शुद्धता वीतरागता-ऐसा जो आत्मा का स्वरूप, वह आत्मा। ऐसे ज्ञान और श्रद्धा-विश्वास करके, राग से हटकर स्वरूप में स्थिर हो, उसे यहाँ तप और धर्म कहा जाता है। आहा...हा...!

**मुमुक्षु –** कोई उपवास नहीं करे...

**उत्तर –** कौन उपवास करता था? अपवास करता है, अपवास – माठोवास। उपवास कहाँ है? उप अर्थात् आत्मा मे समिपमें जाकर स्थिर होना, उसका नाम वास्तव में उपवास है। समझ में आया?

**तो लहु पावइ परम गई** भाषा ऐसी है, क्योंकि जिसमें मोक्षस्वरूप भगवान आत्मा है, उसमें लीन होने से, **लहु** अर्थात् शीघ्र-अल्प काल में **पावइ परम गई** वह परम गति को पाता है। परम गति अर्थात् पूर्णानन्द मोक्षदशा को पाता है। उसे फिर चार गतियाँ नहीं होती और परम गति पाने के बाद उसे फिर से अवतरित नहीं होना पड़ता। कहो, समझ में आया? '**तो लहु पावइ परम गई पुण संसार ण एहि**' दो, अस्ति-नास्ति की है। जिसने भगवान आत्मा में शुद्धता के स्वभाव का विश्वास करके और विश्वास से उसमें रमकर और उसके द्वारा परमगति को प्राप्त किया, वह फिर से संसार प्राप्त नहीं करता। '**पुण संसार ण एहि,' फिर निश्चय से कभी संसार में नहीं आयेगा.....** ऐसा कहकर, जिसे परमगति प्राप्त हुई है, उसे फिर अवतार नहीं हो सकता। दुनिया के (लोग) कहते हैं न भाई! भक्तों की पीड़ा मिटाने को अवतार धारण करना पड़ता है, क्या कहलाता है? राक्षसों को मारने के लिये (अवतार ले) – ऐसा स्वरूप नहीं है, वह वस्तु को नहीं समझता है।

यहाँ अपने शुद्ध स्वरूप में स्थिरता करने से वापस नही फिरता और स्थिरता से पूर्ण मुक्ति होने पर वह वापस हटकर अवतरित हो, यह तीन काल में नहीं होता। कहो, समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द की पूर्णता में लीन हुआ, वह अतीन्द्रिय आनन्द में से वापस हटेगा? हैं? मक्खी जैसा (प्राणी) शक्कर की मिठास देखकर चिपटता है तो हटता नहीं। भले ही उसकी पंख चिपक जाये, शरीर में थोड़ा मर्दन (होये), शक्कर लेने से ऐसे हाथ में आ जावे। परन्तु मिठास के कारण उसे छोड़ता नहीं है, वहाँ से उड़ता नहीं है, इसी प्रकार आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द स्वरूप का जिसे पहले विश्वास आया है, विश्वास क्यों (आया है)? ज्ञेय अर्थात् उसका ज्ञान करके कि यह आत्मा आनन्द और शुद्ध है-ऐसा ज्ञान करके जिसे विश्वास आया और विश्वास आकर उसमें से आनंद प्रगट होगा, उसमें स्थिर होता है, लीन होता है, तपता है, लीनता करता है, उसे अल्प काल में मोक्ष स्वभाव ऐसा अपना उस पर्याय में पूर्णदशा को, मुक्ति को प्राप्त करता है। **संसार ण एहि** संसार नहीं पाता। अस्ति-नास्ति की है। पूर्णानन्द की दशा को प्राप्त करता है, वह संसार को प्राप्त नहीं करता। कहो, समझ में आया?

भाई ने बीच में जरा ऐसा अर्थ किया है, हाँ! देखो, **अपने ही शुद्ध आत्मा के श्रद्धान और ज्ञान में तपना, लीन होना, वह निश्चय तप है।** ऐसा जरा किया है। थोड़ा सा ठीक करते हैं, यह फिर किया है, यह पता है, यह पता है। **निमित्त का संयोग मिलाने से उपादान की प्रगटता होती है।** यह सब ऐसा ही चलता है। अपने तो यह सुलटा-सुलटा ले लेना। समझ में आया? इन्हें निमित्त का मूल था सही न ! **निमित्त का संयोग मिलाने से....** मिलाता होगा? यह तो ऐसा कहना है कि वह बारह प्रकार के तप का विकल्प आता है न? ऐसा आता है, इतना... समझ में आया? फिर तो उसकी व्याख्या लम्बी की है, उसका कुछ नहीं। कहो, यह १३ गाथा हुई। तेरहवीं हुई न?

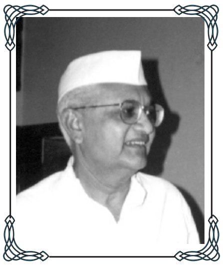

## पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार ग्रन्थ के वचनामृत–४१३ पर हुआ भाववाही प्रवचन

### दि. ६–१२–१९८३, प्रवचन क्रमांक–२२१ (विषय – विधि)

**द्रव्य सदा निर्लेप है। किसको ?– कि जो उसे जाने उसको। संयोग और राग परसे दृष्टि हटाकर, एक समयका जिसका अस्तित्व है उसका लक्ष्य छोड़कर, भगवान जो निर्लेप है–उसकी दृष्टि करे तो सम्यग्दर्शन हो। ४१३.**

यह अंतिम वचनामृत है। वचनामृतका ९६ और १६२ दोनों साथ में है न ? ९६ और १६२. १३वां अंतिम वचनामृत है। '**द्रव्य सदा निर्लेप है। किसको ? – कि जो उसे जाने उसको।**' द्रव्य है वह स्वरूप से निर्लेप है। लेकिन मुझे बहुत उपाधि है, ऐसे संसार का फैलाव कर दिया हो, उसे निर्लेप द्रव्य कहाँ रहा ? उसे द्रव्य निर्लेप रहा नहीं।

आदमी उधारी का धंधा करता है। वह ऐसा कहता है कि भाई ! क्या करें ? हमने उगाही इतनी फैला दी है कि यह व्यापार तो आजीवन करना ही पड़े ऐसा है। इसे बंद कर सके ऐसा नहीं है। लेकिन कहते हैं कि, तुम कहाँ हमेशा रहनेवाले हो ? हम चले जायेंगे तो हमारा पुत्र करेगा। लेकिन ये बंद कर सके ऐसा नहीं है। इसप्रकार यह जीव ममत्व, शरीर से लेकर, कुटुम्ब-परिवार से लेकर, मकान-मिल्कत और इज्जत से लेकर, सगे-सम्बन्धी, स्नेहीओं के सम्बन्ध से लेकर, मित्र और शत्रुओं के सम्बन्ध से लेकर, उससे आगे जाये तो समाज और ज्ञाति-जाति और समाज और देश के सम्बन्ध बाँधकर, फैलाव करके बैठा है। इतना फैलाव किया है।

जैसे तंबू-डेरा डाला हो, वैसे पूरा फैलाव करके बैठ गया है। यह मेरा देश, देश के लिये मुझे इतना करना। यह मेरी ज्ञाति और उसके लिये मुझे इतना करना। यह मेरा कुटुम्ब उसके लिये भी मुझे इतना करना। शरीर के लिये इतना करना। आत्मा के लिये ? तो कहता है, उसके लिये कुछ नहीं करना। ऐसा हिसाब लगाया है।

कहते हैं कि अन्दर में जो आत्मतत्त्व है, परम स्वरूप है आत्मा का वह तो त्रिकाल निर्लेप है। सदा यानी तीनों काल निर्लेप है। किसी संयोग को वह स्पर्शता नहीं। संयोग उसे स्पर्श नहीं करते। लेकिन ऐसे स्वरूप को जाने उसे वह निर्लेप है ऐसा ज्ञान होता है। बाकी तो फैलाव करके लेपायमान होकर पड़ा है। ऐसा लिपट गया है कि ऐसा वाला... ऐसा वाला.. ऐसा वाला.. ऐसी मान्यता का इतना गाढा लेप लगा है कि वास्तव में मैं कैसा हूँ वही भूल गया है। इतना गाढ़ लेप जमा है।

'**संयोग और राग परसे दृष्टि हटाकर, एक समयका जिसका अस्तित्व है उसका लक्ष्य छोड़कर, भगवान जो निर्लेप है–उसकी दृष्टि करे तो सम्यग्दर्शन हो।**' सूत्र जैसी बात कही है। तीन पंक्ति है लेकिन सूत्र जैसी बात की है। अर्थात् तीन पंक्ति बहुत समा दिया है। संयोग का लक्ष छोड़कर, संयोग परकी दृष्टि छोड़कर और राग ऊपर की भी दृष्टि छोड़कर। दो बात ली है। संयोग की दृष्टि छोड़कर माने क्या ? कि यह संयोग मुझे लाभकर्ता है और इतने संयोग मुझे नुकसानकर्ता हैं, वह संयोग

परकी दृष्टि है। कोई संयोग तुझे लाभ का कारण नहीं, कोई नुकसान का कारण नहीं। कोई सुख का कारण नहीं और कोई दुःख का कारण नहीं।

दुकान में कमाई हो वह लाभ नहीं ? और शरीर में अशाता की वेदना हो वह दुःख नहीं ? नहीं। कोई संयोग सुख कारण या लाभ का कारण, कोई दुःख का कारण या अलाभ का कारण है ही नहीं। समस्त विश्व से अलग हिसाबकिताब है। तेरी आत्मा से जो भिन्न है, उस भिन्नत्व की दृष्टि में लाभ-नुकसान और सुख-दुःख का हिसाब खत्म हो जाता है। और जहाँ लाभ-नुकसान और सुख-दुःख का कारण भास्यमान होता है वहाँ उसने उससे भिन्नता मानी नहीं, स्वीकार नहीं किया, लेकिन अभिन्नरूप से उसे आत्मसात किया है- आत्मरूप माना है। आत्मरूप माना है उसे संयोगी दृष्टि है। मैं संयोगावाला हूँ, यह संयोगी दृष्टि है।

रागपर से भी दृष्टि छोड़कर, विकृत अंश जो है, परिणमन में जो विकृत अंश है अथवा स्वभाव का विरोध करनेवाला, तिरस्कार करनेवाला जो भाव है उसमें भी मिथ्याबुद्धि से अहंपना हो रहा है। वह मिथ्याबुद्धि से हो रहा है। वास्तविकरूप से स्वयं वैसा नहीं है। उस दृष्टि को छोड़कर और '**एक समयका जिसका अस्तित्व है...**' अर्थात् एक समय की पर्याय में जो अहंपना है, ऐसा लगता है। हयाती का अर्थ ऐसा है। एक समय की ज्ञानादि की पर्याय में भी जो अहंपना होता है। अर्थात् पर्यायमात्र का स्वयं के अस्तित्वरूप में अवधारण हो जाता है, वह एक समय की हयाती उसने मानी है। एक समय की हयाती में भावमरण है। क्योंकि दूसरे समय वह हयाती नहीं है। अथवा एक समय की पर्याय में जो स्वयं के अस्तित्व का स्वीकार किया है उसे हयाती कहते हैं।

'**उसका लक्ष्य छोड़कर,...**' उसपर से लक्ष्य छोड़कर, '**भगवान जो निर्लेप है...**' अन्दर में जो निर्लेप तत्त्व है उसे भगवानतत्त्व कह दिया है। जिसमें भव और भव के कारण का अभाव है। भगवान को भव होते हैं ? भगवान को भव नहीं होते। तो जिसमें भव का अभाव है और भव के किसी कारण का भी तीनों काल अभाव है। ऐसा जो आत्मद्रव्य है वह अन्दर में निर्लेप है। अथवा ऐसा जो भगवान अत्मतत्व है वह राग से निर्लेप है, एक समय की पर्याय से निर्लेप है और जगत के सर्व प्रकार के संयोग से वह निर्लेप है।

शरीर में केन्सर होता है तो आदमी को ऐसा लगता है कि अरेरे..! मुझे केन्सर हो गया। मैं तो मर गया। मरनेसे पहले, अभी मृत्यु होनेसे पहले। ज्ञान हो तो उसे क्या होता है ? कि मेरा आत्मा निर्लेप है। शरीर के कहलानेवाले किसी भी प्रकार के दर्द से मेरा आत्मा किंचित्मात्र स्पर्शित नहीं है और लेपायमान नहीं है। ऐसा है। किंचित्मात्र। मैं शरीर से भिन्न हूँ तो शरीर की विकृतसे भी मैं भिन्न हूँ। शरीर का रोग शरीर में। उन सबसे जो निर्लेप है उसकी दृष्टि करे अर्थात् उसमें स्वपना स्थापित करे। स्वयं जहाँ है वहाँ स्वपना स्थापित करे। स्थापित नहीं किया है इसलिये उसे कहते हैं कि स्थापित करे। तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। तब उसे आत्मदर्शन होता है, सत्य दर्शन होता है, तब उसे धर्म होता है ऐसा कहने में आता है। यह धर्म का स्वरूप है।

निर्लेप भगवान की दृष्टि करनी वहाँ धर्म का उत्पाद होता है, वहाँ धर्म का प्रारंभ होता है। इसके सिवा अन्य कीसी भी प्रकार से धर्म की उत्पत्ति नहीं होती अथवा धर्म की हयाती नहीं है। इसप्रकार ४१३ वचनामृत में इस बोल का व्याख्यान, आत्मा निर्लेप है उसके उपर प्रवचन है। १६२ है न ? पूरा वचनामृत है।

'**द्रव्य सदा निर्लेप है। स्वयं ज्ञाता भिन्न ही तैरता है।**' जाननेवाला भाव भिन्न ज्ञानरूप स्वभाव से भिन्न ही तैरता है। '**जिस प्रकार स्फटिक में प्रतिबिम्ब दिखने पर भी स्फटिक निर्मल है, उसी प्रकार जीव में विभाव ज्ञात होने पर भी जीव निर्मल है-निर्लेप है।**' स्फटिक में प्रतिबिम्ब उत्पन्न होता है तब भी स्फटिक तो निर्मल ही

है। '**ज्ञायकरूप परिणमित होने पर पर्याय में निर्लेपता होती है।**' मैं ज्ञायक हूँ, इसप्रकार जहाँ परिणमन हुआ वहाँ पर्याय भी निर्लेप-निर्मल होती है। '**ये सब जो कषाय–विभाव ज्ञात होते हैं वे ज्ञेय हैं, मैं तो ज्ञायक हूँ ऐसे पहिचाने–परिणमन करे तो प्रगट निर्लेपता होती है।**' ऐसा है।

'**द्रव्य सदा निर्लेप है। किसको ?**' ऐसे द्रव्य का जो लक्ष्य करे उसको। द्रव्य भी निर्लेप है और उसकी पर्याय भी वहाँ निर्लेप हो जाती है। द्रव्याकार होती है यानी निर्लेप होती है। वह जीव वहाँ राग में लेपायमान नहीं है। जिसकी पर्याय में निर्लेपता हुई वह जीव राग में भी लिप्त नहीं होता। वह सम्यग्दृष्टि है। यहाँ तक रखते हैं।

## पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार ग्रन्थ के वचनामृत–४१८ पर हुआ भाववाही प्रवचन
## दि. ११–१२–१९८३, प्रवचन क्रमांक–२२५ (विषय – विधि)

**जाननेवाला.. जाननेवाला.. जाननेवाला..–वह मात्र वर्तमान जितना ही सत् नहीं है। ज्ञायक तत्त्व तो अपना त्रिकाली सत्त्व बता रहा है। ज्ञायककी प्रिसिद्धि वर्तमान जितनी ही नहीं, बल्कि वर्तमान है सो तो त्रिकालीको ही प्रसिद्ध कर रहा है। ज्ञायककी वर्तमान अस्ति तो त्रिकाली अस्ति–सत्को बतलाती है। ४१८.**

... वर्तमान पर्याय स्वयं को प्रसिद्ध करने के बजाय त्रिकाली ज्ञायकभाव को प्रसिद्ध करती है, ऐसा दृष्टिकोण यहाँ लिया है। वैसे तो वर्तमान प्रगट हो रही अवस्था अपने स्वरूप को तो करती ही है। स्वयं खुद को तो प्रगट करती ही है। लेकिन यहाँ वह दृष्टिकोण नहीं है।

जिसे स्वभाव की अधिकता हुई है और एक समय की पर्याय की अधिकता नहीं है, अधिकता नहीं ऐसे जीव को परिणमन में परिवर्तित हुआ दृष्टिकोण कैसा होता है ? यहाँ वह शैली पकड़ी है। '**जाननेवाला.. जाननेवाला.. जाननेवाला...**' ऐसा जो वर्तमान जाननेवाला तत्त्व अनुभवगोचर हो रहा है, वह वेदन भले ही वर्तमान में हो फिरभी वह वर्तमान जितना नहीं है, वर्तमान जैसा ही नहीं है। वर्तमान तो क्षणवर्ती है। पूरा तत्त्व तो त्रिकाली है। इसलिये वास्तव में तो वह वर्तमान जाननेवाले की जो प्रसिद्धि है, प्रगट हुई जो जाननेवाली पर्याय है वह त्रिकाली को प्रसिद्ध करती है।

जैसे कोई श्रीमंत गृहस्थ की नौकरानी हो, वह अपनी गाड़ी लेकर सफाई करने आती हो। तो वह जिस घर की सफाई करती है, झाड़ु निकालना कहते हैं न ? उसकी श्रीमंताई कितनी होगी ? ऐसा परोक्षरूप से प्रसिद्ध होता है। वैसे कहते हैं कि यह जाननेवाली एक समय की पर्याय छः द्रव्य का जो स्वीकार करती है। एक समय की जाननेवाली पर्याय छः द्रव्य को जाने। छः द्रव्य की अस्ति को स्वीकारती है न ? यदि एक समय की पर्याय ज्ञानरूप से इतना कार्य करती हो तो त्रिकाली ज्ञायक की महानता कितनी ? उसकी जो अधिकाई है, उसका जो बड्डपन है उसमें जाननेवाला जो वर्तमान सत् है वह गौण हो जाता है और त्रिकाली सत् मुख्य रहता है। और वह मुख्य रहता है उसका कारण कि उसकी महत्ता भी मुख्य रहनेयोग्य है, ऐसी ही उसकी महत्ता है।

तीर्थंकर की स्तुति की गाथा है उसमें यह विषय लिया है कि '**कर इन्द्रियजय ज्ञानस्वभाव से अधिक जाने आत्मको**' जो भिन्नता जाननी है कि मैं राग एवं पर से भिन्न हूँ, उसमें साथ-साथ वह बात गर्भित है कि राग और पर से मैं अधिक हूँ। मात्र भिन्न हूँ इतना ही नहीं, अपितु उससे मैं अधिक हूँ, विशेष हूँ। ऐसी अपनी अधिकाई आये बिना, भाव में ऐसी अधिकता

आये बिना उसे रागादि अनादि से जो अधिकपने मुख्य हो रहे हैं, वह छूटे ऐसा नहीं है। रागादि परिणाम है उसमें अनादि से इतनी अधिकाई की है कि पूर्ण महान चैतन्य सत्ताधारी त्रिकाली तत्त्व को उसने नहीं के बराबर रखा है। है फिर भी नहीं के बराबर रखा है। मानो है ही नहीं। ऐसी परिस्थिति में रखा है।

यहाँ तो कहते हैं कि अब वर्तमान अवस्था प्रगट है और त्रिकाली प्रगट नहीं है। प्रगट यानी उत्पादरूप नहीं है। फिर भी हमें अब वर्तमान (पर्याय) भी दिखती नहीं। वर्तमान में भी त्रिकाली के ही दर्शन होते हैं। वर्तमान में वर्तमान नहीं दिखता लेकिन वर्तमान में त्रिकाली दिखाई देता है। '**ज्ञायककी वर्तमान अस्ति तो त्रिकाली अस्ति–सत्‌को बतलाती है।**' ऐसा है। निश्चय से तो वर्तमान जाननेवाला भाव जो हयात है, अस्ति यानी प्रगट होता हुआ मौजूद भाव है वह त्रिकाली सत् को बतलता है–त्रिकाली अस्तित्व को बतलाता है। इसप्रकार स्वरूप का जो मुख्यरूप से लक्ष्य है वह किसप्रकार से प्रयोगात्मकरूप से है ऐसी यहाँ खास प्रकार से भाषा अथवा शैली कही है।

मुमुक्षु :– वैसे देखो तो सबसे बड़ा लाभ है।

पूज्य भाईश्री :– ये विधि का प्रकार आता है कि वर्तमान में वेदन होता है, ज्ञान–आनंदादि का वर्तमान में वेदन होता है फिर भी लक्ष्य जो त्रिकाली पर है, तब कहते हैं कि वह वर्तमान है सो त्रिकाली को बतलानेवाला है। वर्तमान वर्तमान को बतलाता है उस बात को नहीं लेकर वर्तमान त्रिकाली को बतलाता है ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :– यह वर्तमान है, वह त्रिकाली का है यह अनुमान है न ?

पूज्य भाईश्री :– नहीं, अनुमान नहीं है। Practically अनुमान तो परलक्ष्यी ज्ञान में तर्कणा में अनुमान होता है। Practical ज्ञान में अनुमान नहीं होता।

सुवर्ण के आकृतिपर से पूरा गहना सोना का है, अंतर–बाह्य सब सुवर्ण ही है। इसका वज़न बतलाता है कि यह सुवर्ण है। उसमें वैसी अवस्था नहीं दिखती, पूरा सोना दिखता है। पूरा दिखता है कि नहीं ? परिचित व्यक्ति के लिये ऐसा नहीं कहते कि मैं बराबर पहचानता हूँ। भले वह ना कहे, लेकिन वह ना जूठी है। अथवा हाँ कहे तो हाँ जूठी है। ऐसा कैसे कहता है ? यदि मात्र वर्तमान देखे तो उससे उलटा निर्णय कहाँ–से करे ? कि उसमें पूरा दिखता है। वह तो योग्यता दिखने का सवाल है।

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में ऐसी शक्ति रही है कि भले ही उसका विषय सीधा एक अंश होता हो। वर्तमान पर्याय माने ? एक अंश उसका विषय होता हो, फिर भी वह अंश है ऐसा ज्ञात होता है, तब अंशी के ज्ञानसहित अंश का ज्ञान है। जब यह अंश है ऐसा जानने में आता है तब अंश कहाँ–से नक्की किया ? कि अंशी पूरा पदार्थ ज्ञान में नक्की होता है तब उसका एक अंश नक्की होता है। इसीलिये तो पहले परिचय करके पहचान करने की बात है।

घर का काँच का अच्छा सुन्दर Imported glass का जग मंगवाया हो, घर में इस्तमाल करते हों। उसका एक टूकड़ा, कोई एक अंश घर के बाहर आँगन में पड़ा हो और खुद बाहर से आ रहा हो तब टूकड़ा देखता है ? अपना जग फूट गया लगता है। क्या कहता है ? तूने तो टूकड़ा देखा है। पूरा जग कहाँ देखा है ? टूटा हुआ तो देखा नहीं। यह टूकड़ा ही बतलता है कि जग पूरा नहीं रहा। ज्ञान में पूरा आता है कि मात्र टूकड़ा आता है ?

गेहूँ की और चावल की बोरी लेने जाता है। वहाँ Sample निकालता है। ये चौथी बोरी अच्छी है। ऊपर की बोरी में कचरा ज्यादा है, दूसरी बोरी में दाना बराबर नहीं है, तीसरा ऐसी है, चौथी बराबर है। पूरी बोरी ज्ञान में आती है या Sample आता है ? देखता

है Sample के सामने और ज्ञान करता है पूरी बोरी का। ये चावल पकते हैं। उसे देखते है कि नहीं ? बीस किलो चावल बनाये हो और कलछे पर पाँच दाने ले। दबाए। पाँच दानेमें-से एक-दो दाने को ऊँगली पर लेकर दबाता है। पक गया है। सब चावल पक गया है ऐसा निश्चित करता है। या सब दाने को दबाकर देखना पड़ता होगा ?

मति-श्रुतज्ञान में वह शक्ति रही है कि वर्तमान ज्ञानपर-से अनन्त.. अनन्त.. अनन्त... ज्ञान का जो धाम है वह ज्ञानगोचर हो जाता है। अल्पज्ञ पर्याय में परिपूर्ण तत्त्व का ज्ञान होता है, इतनी सामर्थ्य तो उसकी अल्पज्ञ पर्याय में है। उसकी परिपूर्णता की तो कोई बात ही नहीं हो सकती। ऐसा है। ऐसी यह प्रयोग की शैली है। लक्ष्य आत्मा पर है और पर्याय गौण होती है। पूर्ण तत्त्व अनुभव में आता है। वर्तमान अवस्था अनुभव में आती है ऐसा नहीं कहते। आत्मा का अनुभव हुआ ऐसा कहते हैं। हुआ तो है अवस्था का अनुभव, लेकिन लक्ष्य अवस्था पर नहीं है इसलिये आत्मा का अनुभव हो गया है ऐसा कहने में आता है। ४१८ हुआ।

## धार्मिक कार्यक्रम

**सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई के वार्षिक समाधिदिन पर तीन दिवसीय धार्मिक कार्यक्रम निम्नोक्त स्थान पर आयोजित किया गया है। चैत सुदी ३, शनिवार दि.९-४-२०१६ से चैत्र सुदी ५, सोमवार दि.११-४-२०१६ पर्यंत जिनमंदिर में मंडलविधान रखा गया है। एवं 'शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर' में प्रात: ७.०० से ८.०० पूज्य भाईश्री शशीभाई का सीडी प्रवचन, दोपहर ४.०० से ५.०० गुणानुवाद, रात ८.०० से ९.०० पूज्य भाईश्री शशीभाई का वीडियो प्रवचन एवं भक्ति रखी गई है। दि.११-४-२०१६, चैत्र सुदी ५ के दिन सुबह ४.०० बजे 'शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर' में भक्ति एवं दो मिनट का मौन रखा जायेगा। तत्पश्चात ७.०० से ८.०० प्रवचन और बाद में पूज्य भाईश्री के समाधि स्थल पर भक्ति रखी गई है। इस प्रसंग पर आनेवाले मुमुक्षुओं के लिए आवास एवं भोजन व्यवस्था नि:शुल्क रखी गई है। आनेवाले मुमुक्षु भाई-बहनों से विनम्र सूचन है की वे अपने आने कि सूचना पहले से दे, ताकि उनके आवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था हो सके।**

**संपर्क :- श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, ५८०, जूनी माणेकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर, फोन : (०२७८) २५१५००५**

**ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (मार्च-२०१६) का शुल्क श्री परिचंद घोषाल, भावनगर के नाम से साभार प्राप्त हुआ है, जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।**

## वैराग्य समाचार

श्री ब्रह्मचारी अश्विनभाई शाह, लींबडी। वर्ष ५४ का दि.१-२-२०१६ के दिन देह परिवर्तन हुआ है। वे कैन्सर जैसी गम्भीर बिमारी के बीच भी तत्त्वरुचि बढाकर भेदज्ञान का अभ्यास करते थे। अंतिम स्थिति में शांतिपूर्वक धर्म श्रवण करते थे। लींबडी दिगंबर जिन मंदिर के लिये तन-मन-धन से अर्पणता वाले कर्मनिष्ठ मुमुक्षु थे। उनके कुटुंबी जन प्रति स्वानुभूतिप्रकाश परिवार सांत्वना प्रेशित करता है।

## पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानी के १०५ वें जन्मजयंति महोत्सव प्रसंग पर सुवर्णपुरी सोनगढ़ में धार्मिक कार्यक्रम

पूज्य गुरुदेवश्री के महापुराण के पात्र ऐसे पूज्य निहालचंद्रजी सोगानीजी की १०५ वीं जन्मजयंति उनकी साधनाभूमि सुवर्णपुरी में दि.१५–५–२०१६ से दि.१७–५–२०१६ त्रिदिवसीय धार्मिक कार्यक्रम सहित अत्यंत आनंद उल्लासपूर्वक मनाने का निश्चित किया गया है। यह धार्मिक कार्यक्रम सोनगढ़ स्थित गुरुगौरव होल में मनाया जायेगा।

इस प्रसंग पर प्रातः पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा (आश्रम में), जिनदर्शन तथा पूजन जिनमंदिर में, पूज्य गुरुदेवश्री का सीडी प्रवचन स्वाध्याय मंदिर में, तत्पश्चात् पूज्य भाईश्री शशीभाई के द्रव्य दृष्टि प्रकाश ग्रंथ पर गुरुगौरव होल में प्रवचन, दोपहर में पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन, बादमें पूज्य सोगानीजी का गुणानुवाद गुरुगौरव होल में, रात्रि में पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन और गुरुगौरव होल में भक्ति एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम सहित मनाया जायेगा। दि.१७–५–२०१६ पूज्य सोगानीजी के जन्मजयंती दिन पर पूज्य भाईश्री के प्रवचन के बाद जन्मवधामणा तथा भक्ति की जायेगी। इस प्रसंग में भारतवर्षीय सभी मुमुक्षु भाई–बहनों को पधारने का हार्दिक निमंत्रण है। आनेवाले मुमुक्षुओं को संख्या सहित अपने आने की जानकारी संस्था के कार्यालय में देने की विनंती।

संपर्क : श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट, ५८०, जूनी माणेकवाडी, भावनगर–३६४००१

आयोजक : श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट, भावनगर


## 'स्वानुभूतिप्रकाश' (हिन्दी) के स्वामित्वका विवरण फोर्म नं.४, नियम नं. ८

| | | |
|---|---|---|
| पत्रका नाम | : | 'स्वानुभूतिप्रकाश' (हिन्दी) |
| प्रकाशन स्थल | : | श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, ५८० जूनी माणेकवाडी, भावनगर–३६४००१ |
| प्रकाशन अवधि | : | मासिक |
| मुद्रक | : | भगवती ऑफसेट, १५/सी बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद–३८०००४ |
| प्रकाशकका नाम | : | श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, ५८० जूनी माणेकवाडी, भावनगर–३६४००१ |
| संपादकका नाम | : | हीरालाल जैन, (भारतीय), ५८० जूनी माणेकवाडी, भावनगर–३६४००१ |
| स्वामित्व | : | श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, ५८० जूनी माणेकवाडी, भावनगर–३६४००१ |

मैं, हीरालाल जैन, एतद द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकृत जानकारी और विश्वास अनुसार उपरोक्त विवरण सत्य है।

हीरालाल जैन

ता. ३१ मार्च, २०१६

मेनेजिंग ट्रस्टी, श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट

# पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा

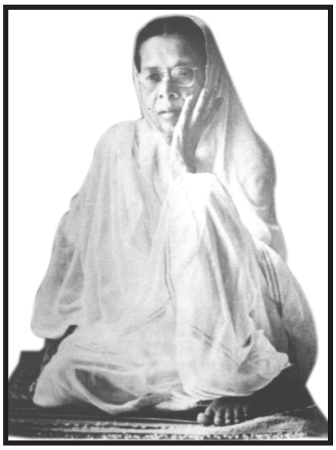

पश्न :– वैराग्यके प्रंसगमें उपयोगको अंतरमें कैसे रखना, वह विस्तारसे समझानेकी कृपा करें।

समाधान :–उपयोगको बारम्बार आत्माकी ओर मोड़ते रहना। शरीरके या दूसरे विचार आये तो, 'आत्मा ज्ञायक है, आत्मामें सुख और आनंद है. संयोग तो सब बाहरके हैं, उन्हें पलटना वह अपने हाथकी बात नहीं है'–इस प्रकार उपयोगको बारम्बार अंतरकी ओर घुमाते रहना, पठन और सुविचार करना।

जीव अकेला आया और अकेला जाता है; उसे अन्य कोई शरण नहीं है, एक आत्मा ही शरण है। गुरुदेवका बताया हुआ मार्ग शरणभूत है। अनन्त जन्म–मरण किये उनमें यह मनुष्य भव प्राप्त हुआ, यह आयु कब पूर्ण हो जायगी उसका कोई भरोसा है? अरे, आयु तो क्षणभंगुर है। कितनोंको छोड़कर स्वयं चला गया और अपनेको छोड़कर दूसरे चले गये–ऐसा है यह संसार!

देवोंकी सागरोपमकी आयु भी पूर्ण होती है और चक्रवर्तीकी आयु भी पूर्ण होती है। जब कि यह तो सामान्य मनुष्यजीवन है। चौथे कालमें भी देखो कैसा होता था! कि कोई युद्धमें गया हो वहीं आयु समाप्त हो जाती थी। आयु कब–कैसे पूर्ण हो जायेगी उसका कोई भरोसा नहीं है। जिसने आत्माको ग्रहण किया हो और आत्माके संस्कार डाले हों वे ही जरुरतके समयमें शरणभूत होते हैं। ऐसे प्रंसगपर पंचपरमेष्ठी, गुरु और आत्माका स्मरण करना।

आयु तो पानीके बुलबुले जैसी है, ओसबिंदुके समान है, कब समाप्त हो जाय उसकी खबर भी नहीं पड़ेगी; इसलिये तो महान चक्रवर्ती, तीर्थकरादि इस संसारको छोड़कर मुनिदशा अंगीकार करते हैं। सच्चा सुख और आनंद आत्मामें है। बाह्यमें कब क्या हो जायेगा, उसकी खबर भी नहीं पड़ती।

मुमुक्ष :–आप कहते हैं, ऐसा ही है।

बहिनश्री :–भगवान आत्मा अपने पास ही है, उसका रटन करते रहना। भगवान आत्मा स्वंय अनन्तशक्तिका भण्डार है, उसका स्मरण करना। यह शरीर तो जड़ है, वह कुछ जानता नहीं हैं। जाननेवाला–ज्ञाता तो स्वयं भीतर बैठा है वह अनंतशक्ति–अनंतसुखसे परिपूर्ण है और आश्चर्यकारी है, उसका रटन करते रहना।

जिनेन्द्र भगवान् कि जिन्होनें आत्माका पूर्ण स्वरुप प्रगट किया है उन्हें तथा जो सधना कर रहे हैं उन गुरुका स्मरण करना, शास्त्रोंका पठन–मनन करना, शरीर और आत्मा भिन्न–भिन्न हैं–ऐसे भदेज्ञानके संस्कार अंतरमें डालते रहना।

मुमुक्ष :–अंतरसे ऐसा लगता है कि आप जो कहते हैं वह सुनते ही रहें!

बहिनश्री :–इतने संस्कार हैं सो अच्छा है। शान्ति ही सुखदायक है, अन्य कोई उपाय नहीं है। आयु उसी प्रकार पूर्ण होनी थी उसे भूले बिना उद्धार नहीं, जल्दी या देरसे भूलना ही होगा, तो पहलेसे ही शान्ति रखना। आर्तध्यान करनेमें कोई लाभ नहीं है। प्रकृतिके सामने कोई चतुराई काम नहीं आती। कोई उपाय ही नहीं है तो शान्ति ही रखना।

बालकः–क्या आत्मा मर नहीं गया है ?

बहिनश्री :–आत्मा शाश्वत है, उसकी मृत्यु नहीं होती। जहाँ भी गया वहाँ आत्मा शाश्वत है, मात्र शरीर बदल

जाता है। आत्मा यहाँका सम्बन्ध छोड़कर दूसरी जगह सम्बन्ध जोड़ता है। बाह्य संयोगको नहीं देखना चाहिये। इस भवमें गुरुदेवकी वाणी वर्षों तक मिली उसके जैसा अन्य कोई सौभाग्य नहीं है। उसके समक्ष तो इन्द्रपद अथवा तीनलोकका राज्य भी तुच्छ है। इसलिए अच्छे-अच्छे प्रसंगोका स्मरण करना, ज्ञायक चैतन्यदेवको याद करना, भगवान तथा गुरुको याद करना।

आत्मा शाश्वत है और शरीरका परिवर्तन होता रहता है। एक भवसे दूसरा भव- ऐसे अनन्त जन्म-मरण....जन्म-मरण किये हैं। वैसेमें, इस भवमें गुरुदेव मिले हैं तो ऐसी भावना प्रगट कर कि भवका अभाव हो जाय, जन्म-मरणका अन्त हो जाय, शरीर ही ना मिले, शरीर चाहिये ही नहीं।

आर्त्तध्यानके भाव कम करके, स्वयं विचार करके शान्ति रखना, भेदज्ञानका अभ्यास करना कि-यह शरीर जुदा और आत्मा जुदा; कोई विकल्प मेरा नहीं है, मेरी इच्छानुसार बाह्यमें कुछ नहीं होता।

दुःखके समय देव-शास्त्र-गुरुका स्मरण हो, वह अच्छा है। उनका स्मरण होनेसे दुःख कम हो जाता हैं। इसलिये शास्त्रमें आता है कि अपने आत्मार्थ जो-जो अच्छे प्रंसग बने हों उनका दुःखके समयमें स्मरण करना। किसी वैराग्यका या गुरुदेवके साथके प्रसंगोंका स्मरण करना। जैसी शान्ति आप लोगोंने रखी है वैसी शान्ति ही रखने योग्य है।

गुरुदेवकी वाणी सबने श्रवण की है। पू. गुरुदेव व्याख्यानमें कईबार कहते थे कि-''बंध समय जीव चेतिये, उदय समय शा उचाट'' भाई, बंधके समय चेते जाना, उदयकालमें चिन्ता करना निरर्थक है। तूने जैसे कर्म पूर्वमें बाँधे थे उन्हींका यह उदय है। इसलिये बंध कालमें ही तू चेत जा। जब परिणामोंमें तूझे विशेष आर्त्तध्यान हो तभी तू चेत जाना। उदयके समयमें नाराजगी क्यों? उदय आ जानेके बाद चिन्ता-खेद-आकुलता करना सब निरर्थक है। यह विभावभाव ही ऐसे दुःखदायक हैं जिनसे ऐसा बंध होता है, इसलिये बंधके समय ही चेत जाना; पीछे उदय आये तब चिंतित होना व्यर्थ है। जो पूर्वमें बांधे हों उनका उदय आने पर उसे बदला नहीं जा सकता। इसलिये परिणाम करते समय तू चेत जाना। गुरुदेव उनके बार व्याख्यानमें कहते थे कि-ऐसे कठोर फल प्राप्त न हों उसके लिये तू अंतरमें ऐसे तीव्र आर्त्तध्यान मत कर।

भविष्यका चित्र कैसा बनाना वह अपने हाथकी बात है। परिणाम करना तेरे हाथकी बात है, परन्तु उदय आये उसे बदलना तेरे हाथमें नहीं है।

''आतमराम अविनाशी आया अकेला,
ज्ञान और दर्शन उसका रुप है।
बहिर्भाव स्पर्श करे नहि आत्मको,
वास्तवमें वह सच्चा ज्ञायकवीर है।''

आत्माराम तो अकेला आया है, और अकेला ही जायगा। ज्ञान और दर्शन तेरे रुप हैं। समय आनेपर ऐसे भाव में स्थित रहे उसे ज्ञायकवीर माना जाता है। बाह्यभाव समय आनेपर आत्माको स्पर्श न करें- उनका प्रभाव तूझ पर न हो, तो तू सच्चा ज्ञायकवीर है।

बाह्यमें पंचपरमेष्ठी और धर्म मंगल, उत्तम और शरणभूत हैं। तथा अंतरमें आत्मा मंगल, उत्तम और शरणभूत है।

गजसुकुमार, सुकौशल आदि मुनिराजों पर उपसर्ग आनेपर वे आत्मामें प्रवेश कर जाते हैं और केवलज्ञानको प्राप्त होते हैं।

इस मनुष्यभवमें गुरुदेवका सान्निध्य प्राप्त हुआ और उन्होनें भवके अभावका मार्ग बतलाया। 'आत्मा सर्व

विभावोंसे भिन्न शुद्धात्मा है'- ऐसा भेदज्ञान करके, द्रव्यदृष्टि करनेका जो मार्ग गुरुदेवने बतलाया है, उसकी रुचि हो, वांचन-विचार करके उसकी लगन लगे वही जीवनमें करने योग्य है।

संसारमें ऐसे पुण्य-पापके उदय तो आते ही रहते हैं और जिसने जो आयु धारण की है, उसका अंत भी अवश्यम्भावी है।

विचार आये, याद आये तो विचारोंको बदलते रहना। आकुलता करनेसे क्या हो ? शांति ही सुखदायक है। जहाँ निरूपायता है, जहाँ कोई उपाय नहीं चलता, वहाँ शान्ति सुखदायक है इसलिये शांति रखना ही एकमात्र उपाय है।

इस मनुष्यभवमें आत्महित हो वही लाभदायक है। यह मनुष्यभव तो बड़ी कठिनाईसे प्राप्त होता है। रागके कारण दुःख होता है, परन्तु परिणामोंको पलटे बिना छूटकारा नहीं है। (प्राप्त प्रसंगको) भूले बिना और किसी प्रकारसे निस्तार नहीं। संसारका स्वरूप ही ऐसा है। आत्मा ज्ञाता है. शरीर भिन्न है और जो विकल्प उठते हैं वह अपना स्वभाव नहीं है। आत्मा अपूर्व एवं अनुपम है। जीवनमें आत्माका कुछ सार्थक हो तो वह श्रेयरूप है। नहीं तो जन्म-मरण....जन्म-मरण चला करते हैं; जीवने ऐसे अनन्त जन्म-मरण किये हैं। देव, मनुष्य, नरक और तिर्यंचमें अनंतबार जन्मा और मरा है। महान राजा हो तब भी आयु तो पूर्ण होती ही है, इसलिये शान्ति रखना ही सुखदायक है।

अब तो यही करना है, कि जिससे भव ही न हो अर्थात् भवका अभाव हो जाय। आत्मामें सब कुछ भरा है, कहीं बाहर लेने जाना पड़े ऐसा नहीं है। बाह्यमें कहीं सुख-शान्ति नहीं है; सुख-शांति आत्मामें भरी है। जीव बाह्यमें संतोष तथा शान्ति मानता है। वह उसकी भ्रमणा है। अंतर आत्मामेंसे, आत्माका सुख और शान्ति कैसे प्रगट हो, आत्माका कल्याण कैसे हो, उस हेतु प्रयत्न करना चाहिये।

बहुतसे पुण्य किये हों तब यह मनुष्यभव प्राप्त होता है। उसमें भी सच्चे गुरुका मिलना महा मुश्किल है। मनुष्यजन्म मिले, ऐसा धर्म मिले, ऐसे गुरु मिले और उनकी वाणी सुननेको मिले वह सब अत्यंत कठिन है। वह सब प्राप्त हो गया तो अब आत्माकी रुचि प्रगट करना। आत्माका भान कैसे हो, मनुष्यजीवन कैसे सफल हो वही करने जैसा है।

शास्त्रमें आता है न ? कि-अनंत माताओंको तूने इतना रूलाया है कि उनके आँसुओंसे समुद्र भर जाएँ। अनन्त माताओंका तूने इतना दूध पिया है कि समुद्र छलक जाएँ अर्थात् तूने अनन्त जन्म-मरण किये है।

आयु पूर्ण होने पर आत्मा किसीकी राह नहीं देखता कि अमुक व्यक्ति नहीं आया, वह दूर देशमें रहता है इसलिये अभी में ठहर जाउँ। घरमे भी लोग इधर-उधर हों तो वह उनकी भी प्रतीक्षा नहीं करता। आयु पूर्ण होनेपर स्वयं उसी क्षण चला जाता है। पासमें ही सब सो रहे हों, परन्तु उन्हें पुकारनेकी शक्ति भी नहीं रहती, तो बुलाये कैसे? उस समय आवाज भी निकलना मुश्किल पड़ता है। ऐसे समयमें स्वयंकी तैयारी ही काम आती है, अन्य कुछ काम नहीं आता। संस्कार डाले हो वें ही काम आते हैं।

इस जन्मका आयुष्य पूर्ण होने पर आत्माके संस्कार लेकर जाये वह अच्छा है; नहीं तो राग हो तो दुःखी होता है। यह जीव एकके बाद एक शरीर धारण करता है। उनमें देवोंके सागरोपमके आयुष्य भी पूरे हो जाते हैं, तो इस मनुष्यदेहके आयुष्यकी तो गिनती क्या?

इस कालमें तो गुरुदेवने कहा वह अंतरमें करने जैसा है ताकी अब जन्म ही न हो और माता ही न करनी पड़े। गुरुदेवका बतलाया हुआ मार्ग ग्रहण करने योग्य है। जन्म-मरणसे रहित ऐसा जो शाश्वत आत्मा है उसे पहिचानकर ग्रहण करे वही सच्चा कर्तव्य है।

गजसुकुमार स्वयं मुनि हुए थे, वहाँ उनका ससुर आकर उपसर्ग करता है। सिर पर अँगीठी जैसा बनाकर उसमें

दहकते हुए अँगारे रखता है, परन्तु गजसुकुमार स्वयं अंतर्लीन हो जाते हैं और क्षणभरमें केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। वे कृष्ण वासुदेवके भाई थे, फिर भी ऐसा उपसर्ग आया! कृष्ण वासुदेवको ऐसा विचार आता है कि अरे! गजसुकुमार के ऊपर ऐसा उपसर्ग!! परंतु कर्मका उदय आनेपर वहाँ किसीका वश नहीं चलता।

सुकुमाल मुनिपर तीन दिन और तीन रात सियालिनी उपसर्ग करती है, तथापि वे आत्मलीन होकर ध्यान करते रहते हैं और आयु पूर्ण होनेपर स्वर्गलोकमें जाते हैं।

मुनियों पर उपसर्ग आते हैं और अचानक शरीर छूट जाता है। चौथे कालमें भी ऐसे प्रसंग बनते थे। तीर्थकरोंको पानीके बुलबुले देखकर, बादलोके फेरफार देखकर वैराग्य आता है कि संसारका स्वरूप ही ऐसा है! और दीक्षा अंगीकार करके वे चले जाते हैं।

संसार ऐसा है इसलिये शान्ति रखना सुखदायक है। उसे (प्राप्त प्रसंगको) भीतरमेंसे भूले बगैर छूटकारा ही नहीं है। ऋषभदेव भगवान नीलांजनाका नृत्य देख रहे थे; वहाँ क्षणमें फेरफार होता है उसे देखते ही भगवान को वैराग्य आता है। देखो न.....! आयुष्य कब और कैसे संयोगमें पूरा होता है! जैसा आयुका बंध हुआ हो वैसे ही वह पूर्ण होती है।

तथापि संसारी जीवोंको ऐसे अचानक आयु पूर्ण होनेसे आघात लगता है, लेकिन उसरा कोई उपाय नहीं। विचारोको पलटे बिना नहीं है। संसार तो ऐसा ही है।

शरीरसे आत्माकी भिन्नता जानकर, ज्ञायककी पहिचान करके, भेदज्ञान करके, सम्यग्दर्शन प्राप्त करना (यही एक मात्र सुखका पंथ है) ।

गुरुदेवने जिस उपदेशकी जमावट की है, उसे अंतरमें रखकर शांति रखना। गुरुदेवकी वाणी वर्षोंतक बरसती रही उससे जो जमावट हुई है; उसे स्वंय अंतरमें ग्रहण करे-वही कर्तव्य है। ऐसे प्रसंमें जो शान्ति रहती है वह गुरुदेवके उपकारसे ही रहती है।

मुमुक्षको चाहे जैसे तुच्छ प्रसंगमें भी वैराग्यमें जुट जाना योग्य है। यह तो आघातजनक प्रसंग है, इसलिये समाधान करना बहुत कठिन है, तथापि पुरुषार्थ करके समाधान रखना, क्योंकि उसके सिवा अन्य कोई उपाय नहीं है; शान्ति रखना ही एकमात्र उपाय है।

चाहे जैसे प्रसंगोमें भी वैराग्यमें जुट जाना ही आत्मार्थीका कर्तव्य है। चौथे कालके जीव-राजा, तीर्थकर भगवान आदि-ओस बिन्दुओंको देखकर, आकाशमें टूटते हुए तारेको देखकर वैराग्य प्राप्त करते थे। ऐसे प्रसंग देखकर भी उन्हें क्षणभरमें वैराग्य प्रगट हो जाता था। भरत चक्रवर्तीको तो सिरमें सफेद बाल देखकर वैराग्य उत्पन्न हो गया था और अंतरमें उतर गये और केवलज्ञानकी प्राप्ति की।

आत्मा अकेला जन्मता है, अकेला मरता है और अकेला मोक्षमें जाता है। जन्मके समय भी अकेला और मृत्यु हो तब भी अकेला और मृत्यु हो तब भी अकेला, कोई उसका साथी नहीं होता। स्वयं ही कर्म करता है और स्वयं ही भोगता है; तथा पुरुषार्थ करके मोक्षमें भी आप अकेला ही जाता है। अतः स्वयं पुरुषार्थ करके अपने मनको धर्मकी दिशामें-ज्ञायककी ओर मोड़ देना है। आत्मा स्वयं ज्ञायक चैतन्यदेव शरणभूत है, और (बाह्यमें) देव-शास्त्र-गुरु तथा पंचपरमेष्ठी शरणभूत हैं।

जब उपसर्ग आते हैं तब मुनि अंतरात्मामें उतरकर स्वानुभूतिमें झूलते हुए केवलज्ञान प्रगट करते हैं।

अनन्तभव देवके, मनुष्यके किये तथा कितने ही पुण्यके तथा पापके प्रसंग बने, उनमें कोई नवीनता नहीं है। इस संसारमें जो कुछ शेष रह गया हो तो एक आत्मकार्य अर्थात् स्वानुभूति-सम्यग्दर्शन बाकी रह गया है; अतः जीवनमें

यही एक कार्य करने जैसा है। बाहरका तो जीवको सब मिल चुका है. कुछ भी मिले बिना बाकी नहीं रहा। किन्तु जीव सब भूलता आया है। जहाँ भी गया वहाँ एक आत्माकी प्राप्ति बाकी रह गई; अतएव उसका पुरुषार्थ, उसीकी भावना करना।

देहावसान होनेपर छोटे-छोटे बच्चोंको यहाँ छोड़कर चला जाता है और वे बच्चे अपने पुण्यानुसार बड़े होते हैं। जगतमें ऐसा बहुत कुछ होता है; इसलिये स्वयं हिम्मत रखकर आत्माकी शरण लेना, धर्ममें चित्त लगाना। यही वास्तविक कार्य, कर्तव्य है। पुरुषार्थ करके मनकी दिशा बदलनी है। सब अपने- अपने मार्ग पर चले जा रहे हैं, कोई किसीको रोक नहीं सकता। स्वर्गसे इन्द्र उतर आयें या नरेन्द्र आ जायँ-कोई भी आये, आयुष्य पूर्ण होनेपर उसे कोई रोक नहीं सकता। जीव अपने आप गति करके चला जाता है।

यह शरीर भी जब अपना नहीं है तो अन्य सगे-सम्बन्धी कैसे अपने हो सकते हैं? यह सब हमारे हैं ऐसा अपनी कल्पनासे मान रखा है। यह शरीर भी अपनी इच्छानुसार नहीं चलता, क्योंकि वह परद्रव्य है। आत्माके परिणामोंको सुधारकर, वास्तवमें तो 'मुझे परसे सुख नहीं है, सुख तो आत्मामें भरा है'-ऐसा समझकर अपनेको धर्म करना योग्य है।

अपने आप हिम्मत रखकर, मैं स्वयं अपनेसे ही हूँ, कोई किसीको शरण नहीं देता-ऐसा समाधान करना ही सच्चा कर्तव्य है।

यह आयुष्य तो बिजलीके चमकारे सदृश है। श्रीमद्‌जीने कहा है कि-

**''विद्युत लक्ष्मी प्रभुता पतंग, आयुष्य ते तो जलना तरंग।''**

**''पुरंदरी चाप अनंग रंग, शुं राचिए त्यां क्षणनो प्रसंग।''**

[(अर्थात्) लक्ष्मी बिजलीके समान है। अधिकार पतंगके रंगके समान है। आयुष्य पानीकी हिलोर के समान है। कामभोग इंद्रधनुषके सदृश है। इन सबका संबंध तो क्षणभरका है। वहाँ क्या प्रसन्न होना?

बाह्यमें कहीं रुकने जैसा नहीं है; एक आत्माका शरण ही सच्चा शरण है। परमें मेरा-मेरा करता है परन्तु वहाँ कोई भी तेरा नहीं है; इसलिये शास्त्रोंमें चित लगाकर वह एक मार्ग ढूँढ लेने जैसा है कि-आत्माकी कैसे पहिचान हो ? अब ऐसे जन्म-मरणका अभाव कैसे हो, अन्त कैसे आये? -यही संसारमें करने योग्य वास्तविक कर्तव्य है।]

आत्माको किसी परपदार्थकी जरूरत नहीं है; स्वयं मान बैठा है कि मुझे परपदार्थोंसे सुख प्राप्त होता है; परन्तु सुख तो आत्मामें भरा है।

''मैं एक,शुद्ध सदा अरूपी, ज्ञानदर्शन हूँ यथार्थ से।'' निश्चयसे मैं एक शुद्ध ज्ञान-दर्शनमय सदा अरूपी हूँ।

**''कुछ अन्य तो मेरा तनिक, परमाणुमात्र नहीं अरे!''**

**[किंचित्मात्र भी अन्य परद्रव्य परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है यह निश्चय है।]**

''परमाणु मात्र भी कुछ अपना नहीं है। एक परमाणु भी अपना नहीं वहाँ अन्य कहाँसे अपना हो? मात्र कल्पनासे एकत्वबुद्धिके रागवश अपना मानता है। तथापि (प्रासंगिक) परिणामोंको पलटाये बिना छूटकारा नहीं है। अधिक आकुलता और वेदन करनेसे विशेष कर्मबन्ध होता है; शीघ्र या विलम्बसे परिणामोंको पलट कर शांति रखना ही कर्तव्य है। **(स्वानुभूतिदर्शन – ४९०)**

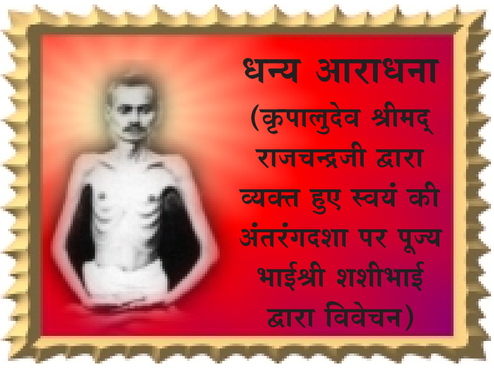


४८०

बंबई, पौष सुदी ५ १९५०

**''किसी भी जीवको कुछ भी परिश्रम देना, यह अपराध है। और उसमें मुमुक्षुजीवोंको उसके अर्थके सिवाय परिश्रम देना, यह अवश्य अपराध है, ऐसा हमारे चित्तका स्वभाव रहता है। ...तथापि आपको वैसे प्रसंगमें क्वचित् परिश्रमका कारण हो, यह हमारे चित्तमें सहन नहीं होता; तो भी प्रवृत्ति करते है। यह अपराध क्षमा योग्य है।''**

इस पत्रमें श्री अंबालालभाईके प्रति लोकोत्तर सज्जनताके भाव प्रदर्शित हुए हैं। सर्व ज्ञानी पुरुषोंका ऐसा व्यवहार होता है कि अपने कारणसे किसी भी जीवको कुछ भी परिश्रम दिया जाय तो वह अपराधके तुल्य लगता है; उसमें भी मुमुक्षुजीवोंको तो परिश्रम देना ही नहीं। ऐसा उनके चित्तका स्वभाव वर्त रहा है। तथापि अंबालालभाईको कोई प्रसंग पर क्वचित् परिश्रमका कारण हो तो वह उनके चित्तसे सहन नहीं होता; फिर भी प्रसंगवशात् वैसे प्रवर्तन हो रहा है, उसे स्वयंका अपराध गिनकर क्षमायाचना की है।

कृपालुदेवकी यह कोई गज़बकी लोकोत्तर सज्जनता है और वह सहज और स्वभाविक है। पूर्ण निर्दोषताके ध्येयमें सूक्ष्म दोषकी भी अनुमोदना नहीं होती।

❖

४८१

पौष वदी १, मंगल, १९५०

**''आज यह पत्र लिखनेका हेतु यह है कि हमारे चित्तमें विशेष खेद रहता है। खेदका कारण यह व्यवहाररुप प्रारब्ध रहता है, वह किसी प्रकारसे है, कि जिसके कारण मुमुक्षुजीवको क्वचित् वैसा परिश्रम देनेका प्रसंग आता है। और वैसा परिश्रम देते हुए हमारी चित्तवृत्ति संकुचित होती-होती प्रारब्धके उदयानुसार वर्तती है। तथापि तद्विषयक संस्कारित खेद कई बार स्फुरित होता रहता है।''**

इस पत्रमें भी उपरोक्त विषयका अनुसंधान है। श्री अंबालालभाईको क्वचित् परिश्रम देनेका प्रसंग बनता है, जिससे खुदके चित्तमें खेद रहता है। इस खेदका कारण व्यवहाररुप प्रारब्धका उदय रहता है, वह है। और ऐसे प्रसंगमें उनकी चित्तवृत्ति संकोचको प्राप्त होती हुई चलती है। ऐसे परिणामोंके वक्त भी भिन्न रहकर, तद्विषयक संस्कार प्राप्त खेद लंबे समय तक स्फुरित होता रहता है, अर्थात् सहजरुपसे खेद चालू रहा करता है, ऐसा मालूम पड़ता है।

-इसतरह बाह्यावृत्तिमें भी कृपालुदेवकी लोकोत्तर सज्जनताका गुण प्रमाणित होता है, साथ ही साथ उसी प्रकारके परिणामके वक्त उन परिणामोंकी सहजता (अकृत्रिमता) भी प्रदर्शित होती है। और उन-उन बाह्य परिणामोंका भिन्न ज्ञानमयदशासे अवलोकन करते हो,ऐसा अंतर ध्वनि उनकी उक्त वचन-रचना द्वारा व्यक्त होता है।

विशेष लक्ष्यमें लेने योग्य बात यह है कि अपनी तरफसे अलौकिक, अपूर्व और महान उपकार जिस भवच्छेद वाणीसे-मुमुक्षुके प्रति हो रहा है, उसकी तो उन्हे अंश मात्र भी गिनती नहीं होती है। परन्तु खुदकी वज़हसे मुमुक्षुको बाह्य परिश्रम लेना पड़े उसका निषेध आ जाता है। इसलिये कहा है कि;

''अहो! गुणवंत ज्ञानी! इस पंचमकालमें भी आपने अमृत वर्षा की है, और मुमुक्षुजीवोंको निहाल कर दिया है।''